रामायण-सुन्दरकाण्ड
सहायिका :—
श्रीमती रामजीवनी देवी, काशी।
मूल्य—भक्ति से पाठ
व्यासपूर्णिमा
२००९ विक्रम
प्रकाशक—विश्वनाथ प्रसाद,
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

सीय राम मय सब जग जानी।
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ॥

❀ ❀ ❀

हरेर्नामैव नामैव हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

गोस्वामितुलसीदासकृत

रामचरित-मानस

सुन्दरकाण्ड

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥ १॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये,
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे,
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥ २॥
अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ॥
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

चौ०-जामवन्त के बचन सुहाये। सुनि हनुमन्त हृदय अतिभाये॥
तब लगि मोहिं परखियहु भाई। सहि दुख कन्दमूल फल खाई॥
जब लगि आवौं सीतहिं देखी। होइ काज मन हर्ष विशेखी॥
अस कहि नाय सबनिकहँ माथा। चले हरषि हिय धरि रघुनाथा॥

सिन्धु-तीर इक भूधर सुन्दर। कौतुक कूदि चढ़े तेहि ऊपर ॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन-तनय बल भारी ॥
जेहि गिरि चरण देइ हनुमन्ता। सो चलि जाय पताल तुरन्ता ॥
जिमि अमोघ रघुपति के बाना। ताही भाँति चला हनुमाना ॥
जलनिधि रघुपति-दूत विचारी। कह मैनाक होहु श्रमहारी ॥
दो०-हनूमान तेहि परसि करि, पुनि तेहि कीन्ह प्रणाम।
राम-काज कीन्हे बिना, मोहिं कहाँ विश्राम ॥
चौ०-जात पवन-सुत देवन देखा। जाना चह बल-बुद्धि-विशेखा ॥
सुरसा नाम अहिन की माता। पठयो सुरन कही तेहि बाता ॥
आजु सुरन मोहिं दीन्ह अहारा। सुनि हँसि बोला पवन-कुमारा ॥

राम-काज करि फिरि मैं आवौं। सीता करि सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहौं आई। सत्य कहौं मोहिं जान दे माई॥
कवनेहुँ यतन देहि नहिं जाना। ग्रससि न मोहिं कहा हनुमाना॥
योजन भरि तेहि बदन पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह योजन मुख तेइ ठयऊ। तुरत पवन-सुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप दिखावा॥
शत योजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघुरूप पवन-सुत लीन्हा
बदन पैठि पुनि बाहर आवा। माँगी बिदा ताहि सिर नावा॥
मोहिं सुरन जेहि लागि पठावा। बुधि बल मर्म तोर मैं पावा॥
दो०-राम-काज सब करिहहु, तुम बल-बुद्धि-निधान।

आशिष दै सुरसा गई, हरषि चले हनुमान ॥

चौ०-निशिचर एक सिन्धु महँ रहई। करिमाया नभके खग गहई॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल विलोकि तिनकी परछाहीं॥
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि विधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान सन कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा॥
ताहि मारि मारुत-सुत वीरा। वारिधि-पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी वन-शोभा। गुञ्जत चञ्चरीक मधु लोभा॥
नना तरु फल फूल सुहाये। खग मृग वृन्द देखि मन भाये॥
शैल विशाल देखि इक आगे। तापर कूदि चढ़ेउ भय त्यागे॥
उमा न कछु कपि की अधिकाई। प्रभु-प्रताप जो कालहिं खाई॥

गिरि पर चढ़ि लङ्का तेहि देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग विशेखी ॥
अति उतङ्ग जलनिधि चहुँ पासा । कनक कोट कर परम प्रकासा ॥

छं०-कनक कोट विचित्र मणिकृत सुन्दराजिर अति घना ।
चौहट्ट हाट सुबाट वीथी चारु पुर बहु बिधि बना ॥
गज वाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथनि को गनै ।
बहु रूप निशिचर यूथ अति बल सेन वरनत नहिं बनै ॥
बन बाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहहीं ।
नर-नाग-सुर-गन्धर्व-कन्या-रूप मुनि-मन मोहहीं ॥
कहुँ मल्ल देह विशाल शैल समान अति बल गर्जहीं ।
नाना अखारन भिरहिं बहु विधि एक एकन तर्जहीं ॥

करि यतन भट कोटिन विकट तनु नगर चहुँ दिशि रच्छहीं ।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खग निशाचर भच्छहीं ॥
एहि लागि तुलसीदास इनकी कथा संच्छेपहिं कही ।
रघुवीर-शर-तीरथ-सरित तनु त्यागि गति पैहइँ सही ॥

दो०-पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार ।
अति लघु रूप धरौं निशि, नगर करौं पइसार ॥

चौ०-मशकसमानरूपकपिधरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निशिचरी । सो कह चलेसि मोहिं निन्दरी ॥
जानसि नाहिं मरम शठ मोरा । मोर अहार लंक कर चोरा ॥
मुष्टिक एक ताहि कपि हनी । रुधिर वमत धरणी ढनमनी ॥

पुनि सम्भारि उठी सो लंका। जोरि पानिकर विनय सशंका॥
जब रावणहिं ब्रह्म वर दीन्हा। चलतविरंचिकहामोहिंचीन्हा॥
विकल होसि जब कपि के मारे। तब जानेसि निशिचर संहारे॥
तात मोर अति पुण्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥
दो०-तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसँग॥
चौ०-प्रविशिनगरकीजैसबकाजा। हृदय राखि कोशलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल शितलाई॥
गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही। राम कृपा करि चितवहि जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

मन्दिर मन्दिर प्रति करि शोधा। देखे जहँ तहँ अगणित योधा॥
गयउ दशानन मन्दिर माहीं। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं॥
शयन किये देखा कपि तेही। मन्दिर महँ न दीख वैदेही॥
भवन एक पुनि देखि सुहावा। हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥

दो०-राम-नाम-अङ्कित गृह, शोभा बरणि न जाय।
नव तुलसी के वृन्द तहँ, देखि हर्ष कपिराय॥

चौ०-लंका निशिचरनिकरनिवासा। यहाँ कहाँ सज्जन कर वासा॥
मन महँ तर्क करन कपि लागे। ताही समय विभीषण जागे॥
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरषि कपि सज्जन चीन्हा॥
यहि सन हठि करिहौं पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

विप्र-रूप धरि वचन सुनावा। सुनत विभीषण उठि तहँ आवा॥
करि प्रणाम पूछी कुशलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम हरि-दासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन अनुरागी। आयहु मोहिं करन बड़ भागी॥
दो०-तब हनुमन्त कही सब, राम-कथा निज नाम।
सुनत युगल तनु पुलकमन, मगन सुमिरि गुणग्राम॥
चौ०सुनहु पवन-सुतरहनिहमारी॥जिमिदशनन्हमहँजीभ बिचारी
तात कबहुँ मोहिं जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानु-कुल-नाथा॥
तामस-तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद-सरोज मन माहीं॥
अब मोहिं भा भरोस हनुमन्ता। बिनुहरि-कृपामिलहिं नहिं सन्ता॥

जो रघुवीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम मोहिं दरश हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषण प्रभु की रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही विधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। ता दिन ताहि न मिलै अहारा॥

दो०-अस मैं अधम सखा सुनु, ताहू पर रघुवीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुण, भरे विलोचन नीर॥

चौ०-जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। ते नर काहे न होहिं दुखारी॥
यहि विधि कहत राम गुणग्रामा। पावन श्रवणसुखद विश्रामा॥
पुनि सब कथा विभीषण कही। जेहि विधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता। देखा चहौं जानकी माता॥

युक्ति विभीषण सकल सुनाई। चलेउ पवन सुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवा। वन अशोक सीता रह जहँवा॥
देखि मनहिं मन कीन्ह प्रणामा। बैठे बीति गई निशि यामा॥
कृश तनु शीश जटा इक वेणी। जपति हृदय रघुपति गुण-श्रेणी॥

दो०-निज पद नयन दिये मन, रामचरण लवलीन।
परम दुखी भा पवन-सुत, निरखि जानकी दीन॥

चौ०-तरुपल्लव महँ रहा लुकाई। करै विचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावण तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा॥
बहुविधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद दिखावा॥
कह रावण सुनु सुमुखि सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी॥

तव अनुचरी करौं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृण धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥
सुनु दशमुख खद्योत-प्रकाशा। कबहुँकि नलिनी करहि विकासा॥
असमन समुभत कहत जानकी। खल सुधि नहिं रघुवीर बानकी॥
शठ सूने हरि आनेसि मोहीं। अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं॥

दो०-आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥

चौ०-सीता तैं ममकृत अपमाना। काटौं तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत नतु जीवन हानी॥
श्यामसरोजदामसम सुन्दर। प्रभु-भुजकरि-करसम दशकन्धर॥

सोइ भुजकंठ कितव असि घोरा। सुनु शठ अस प्रमाण पन मोरा॥
चन्द्रहास हरु मम परितापा। रघुपति विरह अनल संतापा॥
शीतल निशित वहसि वर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥
सुनत वचन पुनि मारन धावा। मय-तनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निशिचरी बुलाई। सीतहिं बहु बिधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना॥

दो०-भवन गयउ दशकन्ध तब, यहाँ निशाचरि वृन्द।
सीतहिं त्रास दिखावहीं, धरहिं रूप बहु मन्द॥

चौ०-त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम-चरण-रत निपुण विवेका॥
सबहिं बुलाइ सुनायसि सपना। सीतहिं सेइ करो हित अपना॥

सपने बानर लंका जारी । यातुधान सेना सब मारी ॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा । मुंडित सिर खंडित भुज बीसा ॥
यहि विधि सो दक्षिण दिशिजाई। लङ्का मनहुँ विभीषण पाई ॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई । तब प्रभु सीतहिं बोलि पठाई ॥
यह सपना मैं कहौं विचारी । होइहि सत्य गये दिन चारी ॥
तासु वचन सुनि ते सब डरीं । जनकसुता के चरनन परीं ॥

दो०-जहँ तहँ गईं सकल मिलि, सीता के मन सोच ।
मास दिवस बीते जु मोहिं, मारिहि निशिचर पोच ॥

चौ०-त्रिजटा सन बोली कर जोरी । मातु विपति संगिनि तैं मोरी ॥
तजौं देह करु बेगि उपाई । दुसह बिरह अब सहा न जाई ॥

आनि काठ रचि चिता बनाई। मातु अनल तुम देहु लगाई॥
सत्य करहु मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवणशूल मम बानी॥
सुनत बचन पद गहि समुझावा। प्रभु प्रताप बल सुयश सुनावा॥
निशिनअनल मिलु राजकुमारी। असकहि सोनिज भवनसिधारी॥
कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलै न पावक मिटै न शूला॥
देखियत प्रगट गगन अङ्गारा। अवनि न आवत एकौ तारा॥
पावकमय शशि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहिं जानि हत-भागी॥
सुनहु विनयमम विटप अशोका। सत्य नाम करुहरु मम शोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहु अगिनि मम करहु निदाना॥
देखि परम विरहाकुल सीता। सो छन कपिहिं कलपसम बीता॥

सो०-कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अङ्गार, लीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥
चौ०-तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम-नाम-अङ्कित अति सुन्दर॥
चकित चितव मुँदरी पहिचानी। हर्ष विषाद हृदय अकुलानी॥
जीति को सकै अजय रघुराई। माया ते अस रची न जाई॥
सीता मन विचार कर नाना। मधुर वचन बोले हनुमाना॥
रामचन्द्र गुण बरनन लागे। सुनतहिं सीता कर दुख भागे॥
लागीं सुनै श्रवण मन लाई। आदिहिं ते सब कथा सुनाई॥
श्रवणामृत जिन कथा सुनाई। काहे न प्रकट होत तिन भाई॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन विस्मय भयऊ॥

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुणा-निधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी॥
नर वानरहिं संग कहु कैसे। कही कथा संगति भइ जैसे॥
दो०-कपि के वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपा-सिन्धुकर दास॥
चौ०-हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजलनयन रोमावलि ठाढ़ी॥
बूड़त विरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहँ जलयाना॥
अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बान सेवक सुखदायक। कबहुँकि सुरति करत रघुनायक॥

कबहुँ नयन मम शीतल ताता। होइहिं निरखि श्याममृदुगाता॥
वचन न आव नयन भरि वारी। अहह नाथ मोहिं निपट बिसारी॥
देखि विरह व्याकुल अति सीता। बोलेउ कपि मृदु वचन पुनीता॥
मातु कुशल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपानिकेता॥
जननी जानि मानहु मन ऊना। तुम तें प्रेम राम कहँ दूना॥

दो०-रघुपति कर सन्देस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे विलोचन नीर॥

चौ०-राम-वियोगकहातबसीता। मो कहँ सकल भयउ विपरीता॥
नूतन किसलय मनहु कृशानू। कालानिशा सम निशि शशि भानू॥
कुवलय विपिन कुन्तवन सारिसा। वारिद तप्त तेल जनु बरिसा॥

जेहि तरु रहौं करत सो पीरा। उरग-श्वास सम त्रिविध समीरा ॥
कहेहू तें दुख घटि कछु होई। काहि कहौं यह जान न कोई ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहिं पाहीं। जानु प्रीति रस इतनेहिं माहीं ॥
प्रभु सन्देस सुनत वैदेही। मगन प्रेम तनु सुधि नहिं तेही ॥
कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरि राम-सेवक सुख-दाता ॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम वचन तजहु विकलाई ॥

दो०-निशिचर-निकर पतङ्ग सम, रघुपति-बाण कृशानु।
जननि हृदय निज धीर धरु, जरे निशाचर जानु ॥

चौ०-जो रघुवीर होत सुधि पाई। करते नाहिं विलम्ब रघुराई ॥

राम-बाण रवि उदय जानकी। तम-वरूथ कहँ यातुधान की॥
अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित ऐहैं रघुबीरा॥
निशिचर मारि तुमहिं लै जैहैं। तिहुँ पुर नारदादि यश गैहैं॥
हैंसुत कपि सब तुमहिं समाना। यातुधान भट अति बलवाना॥
मोरे हृदय परम सन्देहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा॥
कनक भूधराकार शरीरा। समर भयङ्कर अति रणधीरा॥
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघुरूप पवन-सुत लयऊ॥

दो०-सुनु माता शाखामृगहिं, नहिं बल बुद्धि विशाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़ हिं, खाय परम लघु ब्याल॥

चौ०-मन सन्तोष सुनत कपि बानी। भक्ति प्रताप तेज बलसानी ॥
आशिष दीन्ह राम प्रिय जाना। होहु तात बल-बुद्धि-निधाना॥
अजर अमर गुण-निधि सुत होहू। करहिं सदा रघुनायक छोहू ॥
करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥
बार बार नायउ पद शीशा। बोला वचन जोरि कर कीशा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आशिष तव अमोघ विख्याता॥
सुनिय मातु मोहिं अतिशय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी ॥
तिन कर भय माता मोहिं नाहीं। जो तुम सुख मानहुँ मन माहीं॥

दो०-देखि बुद्धि बल निपुण कपि, कहेउ जानकी जाहु ।

रघुपति-चरण हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥

चौ०-चलेउ नाय सिर पैठेउ बागा। फल खाये तरु तोरन लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारे कछु जाइ पुकारे॥
नाथ एक आवा कपि भारी। तेइ अशोक वाटिका उजारी॥
खायेसि फल अरु विटप उपारे। रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे॥
सुनि रावण पठये भट नाना। तिनहिं देखि गर्जा हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संहारे। गये पुकारत कछु अधमारे॥
पुनि पठवा तेइ अक्षकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि विटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

दो०-कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछुक मिलायसि धूरि।

कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि ॥

चौ०-सुनि सुत-वध लङ्केश रिसाना। पठवा मेघनाद बलवाना ॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसि ताही। देखौं कीश कहाँ कर आही ॥
चला इन्द्रजित अतुलित योधा। बन्धु-निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुण भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥
अति विशाल तरु एक उपारा। विरथ कीन्ह लङ्केश-कुमारा ॥
रहे महाभट ताके सङ्गा। गहि गहि कपि मर्दैसि निज अङ्गा॥
तिन्हैं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे युगल मानहुँ गजराजा ॥
मुष्टिक मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक क्षण मुर्च्छा आई ॥
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभञ्जन-जाया ॥

दो०-ब्रह्म-अस्त्र तेहि साधेउ, कपि मन कीन्ह विचार।
जो न ब्रह्मशर मानउँ, महिमा मिटइ अपार॥

चौ०-ब्रह्म बाण तेइ कपि कहँ मारा। परतिहु बार कटक संहारा॥
तेइ जाना कपि मूर्छित भयऊ। नाग फाँस बाँधेसि लै गयऊ॥
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव-बन्धन काटहिं नर ज्ञानी॥
तासु दूत बन्धन तर आवा। प्रभु कारज लागि आपु बँधावा॥
कपि बन्धन सुनि निशिचर धाये। कौतुक लागि सभा लै आये॥
दशमुख-सभा दीख कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥
कर जोरे सुर दिशिप विनीता। भृकुटिविलोकहिं सकलसभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन शङ्का। जिमिअहिगण महँगरुडअशङ्का॥

दो०-कपिहिं विलोकि दशानन, विहँसि कहेसि दुर्वाद ।
सुत-बध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद ॥

चौ०-कह लंकेश कवन तैं कीशा। केहिके बल घालेसि बन खीसा॥
की धौं श्रवण सुनेसि नहिं मोहीं। देखउँ अति अशंक शठ तोहीं ॥
मारेसि निशिचर केहि अपराधा। कहु शठ तोहिं न प्राणकी बाधा॥
सुनु रावण ब्रह्मांड निकाया । पाय जासु बल विरचति माया॥
जाके बल विरञ्चि हरि ईशा । पालत सृजत हरत दशशीशा॥
जा बल शीश धरत सहसानन । अंडकोश सहितै गिरि कानन ॥
धरइ जो विविध देह सुर त्राता । तुमसे शठन सिखावन दाता ॥
हरकोदंड कठिन जेइ भञ्जा । तोहिं समेत नृपदल-मद गञ्जा॥

खर दूषण विराध अरु बाली । बधे सकल अतुलित बलशाली ॥

दो०-जाके बल लवलेश तें, जितेउ चराचर झारि ।
तासु दूत हौं जाहि की, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥

चौ०-जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहसबाहु सन परी लराई ।
समर बालिसन करि यश पावा । सुनिकपि वचन विहँसिबहलावा ॥
खायउँ फल मोहिं लागी भूखा । कपि-स्वभाव तें तोरेउँ रूखा ॥
सब के देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहिं कुमारगगामी ॥
जिन्ह मोहिं मारा तिन्ह मैं मारा । तेहिं पर बाँधेउ तनय तुम्हारा ॥
मोहिं न कछु बाँधे कर लाजा । कीन्ह चहौं निजप्रभु कर काजा ॥
विनती करउँ जोरि कर रावन । सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥

देखहु तुम निज हृदय विचारी । भ्रम तजि भजहु भक्त-भयहारी ॥
जाके बल अति काल डराई । जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बैर कबहुँ नहिं कीजै । मोरे कहे जानकी दीजै ॥

दो०-प्रणतपाल रघुवंश-मणि, करुणासिन्धु खरारि ।
गये शरण प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि ॥

चौ०-राम-चरण पङ्कज उर धरहू । लंका अचल राज्य तुम करहू ॥
ऋषिपुलस्त्य यशविमलमयङ्का । तेहि कुलमँह जनि होसिकलङ्का॥
राम-नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु विचारि त्यागि मदमोहा ॥
बसनहीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषण भूषित वर नारी ॥
राम विमुख सम्पाति प्रभुताई । जाय रही पाई बिनु पाई ॥

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥
सुनु दसकंठ कहौं पन रोपी। राम विमुख त्राता नहिं कोपी ॥
शंकर सहस विष्णु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

दो०-मोह मूल बहु शूलप्रद, त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायकहिं, कृपासिन्धु भगवान् ॥

चौ०-यदपिकहीकपिअतिहितबानी। भक्तिविवेकविरतिनयसानी ॥
बोला विहँसि अधम अभिमानी। मिलाहमहिं कपि गुरुबड़ ज्ञानी॥
मृत्यु निकट आई खल तोहीं। लागेसि अधम सिखावन मोहीं॥
उलटा होइ कहा हनुमाना। मति भ्रम तोरि प्रकट मैं जाना ॥
सुनि कपि-वचन बहुत रिसिआना। वेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥

सुनत निशाचर मारन धाये। सचिवन्ह सहित विभीषरण आये॥
नाय शीश करि विनय बहूता। नीति-विरोध न मारिय दूता॥
आन दंड कछु करिय गुसाँई। सब ही कहा मन्त्र भल भाई॥
सुनत विहँसि बोला दसकन्धर। अङ्ग भङ्ग करि पठवहु बन्दर॥

दो०-कपि कर ममता पूँछ पर, सबहिं कहा समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ॥

चौ०-पूँछहीन बन्दर जबजाइहि। तबशठ निजनाथहिं लै आइहि॥
जिनकी कीन्हेसि अमित बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह की प्रभुताई॥
वचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय शारद मैं जाना॥
यातुधान सुनि रावरण-बचना। लागे रचन मूढ़ सोइ रचना॥

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आये पुरवासी। मारहिं चरण करहिं बहु हाँसी॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमन्ता। भयउ परम लघु रूप तुरन्ता॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनकअटारी। भईं सभीत निशाचर नारी॥
दो०-हरि प्रेरित तेहि अवसर, बहेउ मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बाढ़ि लाग अकास॥
चौ०-देह विशाल परम हरुआई। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ि जाई॥
जरा नगर भे लोग विहाला। लपट झपट बहु कोटि कराला॥
तात मात सब सबहिं पुकारा। याहि अवसर को हमहिं उबारा॥

हमजो कहा न कपि यह होई। वानर रूप धरे सुर कोई॥
साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरै नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगर निमिष इक माहीं। एक विभीषण को गृह नाहीं॥
जाकर भक्त अनल तेइँ सिरिजा। जरा न सो तेहि कारण गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका कपि जारी। कूदि परा पुनि सिन्धु मझारी॥
दो०-पूँछ बुझाइ खोय श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनक-सुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि॥
चौ०-मातुमोहिंदीजैकछुचीन्हा। जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हा॥
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ। हर्ष समेत पवन-सुत लयऊ॥
कहहु तात अस मोर प्रणामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा॥

दीनदयालु बिरद सम्भारी। हरहु नाथ मम सङ्कट भारी॥
तात शक्र-सुत कथा सुनायहु। बाण-प्रताप प्रभुहिं समुझायहु॥
मास दिवस महँ नाथ न आवहिं। तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावहिं॥
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुमहूँ तात कहत अब जाना॥
तुमहिं देखि शीतल भइ छाती। पुनि मोकहँ सोइ दिन सोइ राती॥

दो०-जनक-सुतहिं समुझाइ करि, बहु बिधि धीरज दीन्ह।
चरणकमल सिरनाइ कपि, गमन राम पहँ कीन्ह॥

चौ०-चलत महाधुनि गर्जेउ भारी। गर्भ स्त्रवहिं सुनि निशिचरनारी॥
लाँघि सिन्धु यहि पारहिं आवा। शब्द किलाकिल कपिन्ह सुनावा॥
हरपे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन तब जाना॥

मुख प्रसन्न तनु तेज विराजा । कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ॥
मिले सकल अति भये सुखारी । तलफत मीन पाव जनु बारी ॥
चले हरषि रघुनायक पासा । पूछत कहत नवल इतिहासा ॥
तब मधुवन भीतर सब आये । अङ्गद सहित मधुर फल खाये ॥
रखवारे जब बरजन लागे । मुष्टि प्रहार करत सब भागे ॥

दो०-जाइ पुकारे सकल ते, वन उजार युवराज ।
सुनि सुग्रीवहिं हर्ष अति, करि आये प्रभु काज ॥

चौ०-जो न होत सीता सुधि पाई । मधुवन के फल को सक खाई ॥
एहि विधि मन विचार कर राजा । आइ गये कपि सहित समाजा ॥
आइ सबहिं नावा पद सीसा । मिले सबन अति प्रेम कपीसा ॥

पूछेउ कुशल कुशल पद देखी । राम कृपा भा काज विशेखी ॥
नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना । राखे सकल कपिन कर प्राना ॥
सुनि सुग्रीव बहुरि उठि मिलेऊ । कपिन सहित रघुपति पै चलेऊ ॥
राम कपिन कहँ आवत देखा । किये काज मन हर्ष विशेखा ॥
फटिक-शिला बैठे दोउ भाई । परे सकल कपि चरनन जाई ॥

दो०-प्रीति सहित भेंटे सकल, रघुपति करुणा-पुञ्ज ।
पूछेउ कुशल नाथ अब, कुशल देखि पद-कञ्ज ॥

चौ०-जामवन्त कह सुनु रघुराया । जापर नाथ करहु तुम दाया ॥
ताहि सदा शुभ कुशल निरन्तर । सुर नर मुनि प्रसन्न तेहिं ऊपर ॥
सो विजयी विनयी गुणसागर । तासु सुयश तिहुँ लोक उजागर ॥

प्रभु की कृपा भयउ सब काजू । जन्म हमार सुफल भा आजू ॥
नाथ पवन-सुत कीन्ह जो करनी। सो मुख लाख हु जाइ न बरनी ॥
पवन-तनय के चरित सुहाये । जामवन्त रघुपतिहिं सुनाये ॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाये। पुनि हनुमान हरषि उर लाये ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी । रहति करति रक्षा स्वप्रान की ॥

दो०-नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज-पद यन्त्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट॥

चौ०-चलत मोहिं चूड़ामणि दीन्ही । रघुपति हृदय लाय ताहि लीन्ही॥
नाथ युगल लोचन भरि वारी । वचन कह्यो कछु जनक-कुमारी॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु-चरणा। दीन-बन्धु प्रणतारति हरणा ॥

मन क्रम वचन चरण अनुरागी । केहि अपराध नाथ मोहिं त्यागी ॥
अवगुण एक मोर मैं जाना । बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ॥
नाथ सो नयनन कर अपराधा । निसरत प्राण करहिं हठि बाधा ॥
विरह अनल तनु तूल समीरा । श्वास जरै छण माहिं शरीरा ॥
नयन स्रवैं जल निज हित लागी । जरै न पाव देह विरहागी ॥
सीता की अति विपति विशाला । बिनहिं कहे भल दीन-दयाला ॥

दो०-निमिप निमिष करुणायतन, जाहिं कल्पसत बीति ।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुजबल खलदल जीति ॥

चौ०-सुनिसीतादुखप्रभुसुखअयना । भरिआये दोउराजिव नयना ॥
वचनकाय मन मम गति जाही । सपनेहु विपति कि चाहिय ताही ॥

कह हनुमान विपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजन न होई॥
कितिक बात प्रभु यातुधान की । रिपुहिं जीति आनिये जानकी ॥
सुनु कपि तोहिं समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा । सन्मुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहिं उऋण मैं नाहीं । देखेउँ कर विचार मन माहीं ॥
पुनिपुनिकपिहिं चितव सुरत्राता । लोचन नीर पुलकि अति गाता ॥

दो०-सुनिप्रभुवचन विलोकि मुख, हृदय हर्ष हनुमन्त ।
चरण परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ॥

चौ०-बार बार प्रभु चहत उठावा । प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥
प्रभु-पद-पङ्कज कपिकर शीशा । सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा ॥

सावधान मन करि पुनि शङ्कर। लागे कहन कथा अति सुन्दर॥
कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥
कहु कपि रावणपालित लङ्का। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बङ्का॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोले वचन विगत अभिमाना॥
शाखामृग की अति मनुसाई। शाखा तें शाखा पर जाई॥
लाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा। निशिचरगण बधि विपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछुक मोर प्रभुताई॥

दो०-ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल।
तव प्रताप बड़वानलहिं, जारि सकै खलु तूल॥

चौ०-नाथभक्तितवसबसुखदायिनि। देहु कृपाकरिसो अनपायिनि॥

सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥
राम सुभाव उमा जिन जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना ॥
यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति-चरण भक्ति तेइँ पावा ॥
सुनि प्रभु वचन कहैं कपि वृन्दा। जयजयजय कृपालु सुखकन्दा ॥
तब रघुपति कपि पतिहिं बुलावा। कहा चलै कर करहु बनावा ॥
अब बिलम्ब केहि कारण कीजै। तुरत कपिन कहँ आयसु दीजै ॥
कौतुक देखि सुमन सुर वर्षें। नभ तें भवन चले अति हर्षें ॥

दो०-कपिपति वेगि बुलायउ, आये यूथप यूथ ।
नाना वरण अतुल बल, वानर भालु वरूथ ॥

चौ०-प्रभु-पद-पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा ॥

देखी राम सकल कपि सैना । चितव कृपा करि राजिवनैना ॥
राम-कृपाबल पाइ कपिन्दा । भये पच्छजुत मनहुँ गिरिन्दा ॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भये सुन्दर शुभ नाना ॥
जासु सकल मङ्गलमय कीती । तासु पयान सगुन यह नीती ॥
प्रभु पयान जाना वैदेही । फरके वाम अङ्ग शुभ तेही ॥
जो जो सगुन जानकिहिं होई । असगुन भयउ रावणहिं सोई ॥
चला कटक को बरनै पारा । गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥
नख आयुध गिरि पादप धारी । चले गगन महि इच्छाचारी ॥
केहरि नाद भालु कपि करहीं । डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं ॥

छं०-चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे ।

मन हर्ष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे ॥
कटकटहिं मरकट विकट भट बहु कोटि कोटिन धावहीं ।
जयराम प्रबल प्रताप कोशलनाथ गुण गण गावहीं ॥
सक सहि न भार अपार अहिपति बार बार विमोहई ।
गहि दशन पुनि पुनि कमठ पीठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुवीर रुचिर पयान प्रस्थित जानि परम सुहावनी ।
जनु कमठ खप्पर सर्पराज सों लिखत अविचल पावनी ॥
दो०-यहि विधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपिवीर ॥
चौ०-उहाँ निशाचर रहहिं अशङ्का । जब तें जारि गयउ कपि लङ्का ॥

निज निज गृह सब करैं विचारा। नहिं निशिचर कुल केर उबारा ॥
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवनि भलाई ॥
दूतिन सन सुनि पुरजन बानी। मन्दोदरी हृदय अकुलानी ॥
रहसि जोरि कर पति-पद लागी। बोली वचन नीति-रस पागी ॥
कन्त कर्ष हरिसन परिहरहू। मोर कहा अति हित चित धरहू ॥
समुझत तासु दूत की करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर धरनी ॥
तासु नारि निज सचिव बुलाई। पठवहु कन्त जो चहहु भलाई॥
तव कुल-कमल-विपिन दुखदाई। सीता शीतनिशा सम आई ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार शम्भु अज कीन्हे॥
दो०—रामबाण अहिगण सरिस, निकर निशाचर भेक ।

जब लगि ग्रसत न तबहिं लग, यत्न करहु तजि टेक ॥

चौ०-श्रवणासुनतशठ ताकरबानी। विहँसाजगतविदितअभिमानी॥
समय सुभाव नारि कर साँचा। मङ्गलमहँ भयमन अतिकाँचा॥
जो आवे मरकट कटकाई। जियहिं विचारे निशिचर खाई॥
कम्पहिं लोकप जाके त्रासा। तासु नारि भय करि बड़ हासा॥
अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई॥
मन्दोदरी हृदय कर चीता। भयो कन्त पर विधि विपरीता॥
बैठेसि सभा खबर अस पाई। सिन्धु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मौन करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

दो०-सचिव वैद्य गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज-धर्म-तनु तीन कर, होय बेगि ही नाश॥

चौ०-सोइ रावण कहँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि विभीषण आवा। भ्राता-चरण सीस तेहि नावा॥
पुनि सिर नाइ बैठ निज आसन। बोला वचन पाय अनुशासन॥
जो कृपालु पूछहिं मोहिं बाता। मति अनुरूप कहब मैं ताता॥
जो आपन चाहौ कल्याना। सुयश सुमति शुभगति सुखनाना॥
तौ पर-नारि लिलार गुसाईं। तजौ चौथि चन्दा की नाईं॥
चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई॥
गुणसागर नागर नर जोऊ। अल्प लोभ भल कहै न कोऊ॥

दो०-काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पन्थ ।
सब परिहरि रघुबीर-पद, भजहु कहहिं सद्ग्रन्थ॥
चौ०-तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु के काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता । व्यापक अजित अनादि अनन्ता॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपा-सिन्धु मानुष तनुधारी ॥
जनरञ्जन भञ्जन खल ब्राता। वेद धर्म रक्षक सुरत्राता॥
ताहि बैर तजि नाइय माथा। प्रणातारति भञ्जन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहँ बैदेही। भजहु राम बिनु काम सनेही॥
शरण गये प्रभु काहु न त्यागा। विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रयताप नशावन। सोइ प्रभु प्रगट समझ जिय रावन॥

दो०-बार बार पद लागौं, विनय करौं दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोशलाधीश॥
मुनि पुलस्त्य निज शिष्य सन, कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं तुम सन कही, पाय सुअवसर तात॥

चौ०-मालवन्त अति सचिव सयाना। तासु वचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति विभूषण। सोइ उर धरहु जो कहत विभीषण॥
रिपु उतकर्ष कहत शठ दोऊ। दूरि न करहु यहाँ है कोऊ॥
मालवन्त गृह गयउ बहोरी। कहेउ विभीषण पुनि करजोरी॥
सुमति कुमति सबके उर रहई। नाथ पुराण निगम अस कहई॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥

तव उर कुमति बसी विपरीती । हित अनहित मानहु रिपु प्रीती ॥
काल-रात्रि निशिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥
दो०-तात चरण गहि माँगौं, राखहु मोर दुलार ॥
सीता देहु राम कहँ, अति हित होइ तुम्हार ॥
चौ०-बुधपुराणश्रुतिसम्मतबानी। कही विभीषण नीति बखानी ॥
सुनत दशानन उठा रिसाई । खलतोहिंमृत्युनिकटचालिआई॥
जियसि सदा शठ मोर जियावा । रिपु कर पक्ष मूढ़ तोहिं भावा॥
कहसि न खल असको जग माँहीं। भुजबल जेहि जीता हम नाहीं॥
मम पुर बस तपासिन पर प्रीती । शठ मिलु जाइ तिनहिं कहनीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥

उमा सन्त की यही बड़ाई। मन्द करत जो करै भलाई॥
तुम पितु सरिस भले मोहिं मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥
सचिव संग लै नभ-पथ गयऊ। सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ॥

दो०-राम सत्यसंकल्प प्रभु, सभा काल-बस तोरि।
मैं रघुनायक शरण अब, जाउँ खोरि नहिं मोरि॥

चौ०-असकहि चला विभीषण जबहीं। आयुहीन भे निशिचर तबहीं॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कै हानी॥
रावण जबहिं विभीषण त्यागा। भयो विभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहौं जाय चरण-जल-जाता। अरुण मृदुल सेवक सुख-दाता॥

जे पद परसि तरी ऋषिनारी। दंडक कानन पावन कारी॥
जे पद जनक-सुता उर लाये। कपट कुरङ्ग संग धरि धाये॥
हर-उर-सर-सरोज पद जोई। अहो भाग्य मैं देखब सोई॥

दो०-जिन पायन की पादुका, भरत रहे मन लाय।
ते पद आजु विलोकिहौं, इन नयनन अब जाय॥

एहि विधि करत सप्रेम विचारा। आये सपदि सिन्धु के पारा॥
कपिन विभीषण आवत देखा। जानेउ कोउ रिपु-दूत विशेखा॥
ताहि राखि कपि-पति पहँ आये। समाचार सब तिनहिं सुनाये॥
कह सुग्रीव सुनिय रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहा कपीश सुनहु नर-नाहा॥

जानि न जाइ निशाचर माया। काल रूप केहि कारण आया॥
भेद हमार लेन शठ आवा। राखिय बाँधि मोहिं अस भावा॥
सखा नीति तुम नीक विचारी। मम प्रण शरणागत-भयहारी॥
सुनि प्रभु-वचन हरषि हनुमाना। शरणागत-वत्सल भगवाना॥

दो०-शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि॥

कोटि विप्रवध लागहिं जाहू। आये शरण तजौं नहिं ताहू॥
सन्मुख होई जीव मोहिं जबहीं। जन्म-कोटि अघ नाशौं तबहीं॥
पापवन्त कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥
जो पै दुष्ट हृदय सो होई। मोरे सन्मुख आव कि सोई॥

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥
जग महँ सखा निशाचर जेते। लक्ष्मण हनहिं निमिष महँ तेते॥
जौं सभीत आवा शरणाई। रखिहौं ताहि प्राण की नाई॥

दो०-उभय भाँति लै आवहु, हँसि कह कृपा-निधान।
जय कृपालु कहि कपि चले, अङ्गदादि हनुमान॥

चौ०-सादर तेहिं आगे करि वानर। चले जहाँ रघुपति करुणाकर॥
दूरहिं ते देखे दोउ भ्राता। नयनानन्द दान के दाता॥
बहुरि राम छबि धाम विलोकी। रहे ठिठुक यक टक पल रोकी॥
भुज प्रलम्ब कञ्जारुण लोचन। श्यामलगात प्रणत-भयमोचन॥

सिंहकन्ध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन छबि मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥
नाथ दशानन कर मैं भ्राता । निशिचर वंश जन्म सुर-त्राता ॥
सहज-पाप-प्रिय तामस देहा । यथा उलूकहिं तम पर नेहा ॥

दो०-श्रवण सुयश सुनि आयउँ, प्रभु भञ्जन भवभीर ।
त्राहि त्राहि आरत हरण, शरण सुखद रघुवीर ॥

अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हर्ष विशेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज विशाल गहि हृदय लगावा ॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भक्त भयहारी ॥
कहु लंकेश सहित परिवारा । कुशल कुठाहर बास तुम्हारा ॥

खल मंडली बसहु दिन राती । सखा धर्म निबहै केहि भाँती ॥
मैं जानौं तुम्हार सब रीती । अति नयनिपुण न भाव अनीती॥
वरु भल वास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥
अब पद देखि कुशल रघुराया । जो तुम कीन्ह जानि जन दाया ॥

दो०-तब लागि कुशल न जीव कहँ, सपनेहु मन विश्राम ।
जब लागि भजत न राम पद, शोक-धाम तजि काम ॥

तब लागि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मतसर मद माना ॥
जब लागि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि माथा ॥
ममता तरुण तमी अँधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लागि बसत जीव मन माहीं । जब लागि प्रभु प्रताप रवि नाहीं॥

अब मैं कुशल मिटे भय भारे। देखि राम पद-कमल तुम्हारे॥
तुम कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भवशूला॥
मैं निशिचर अति अधम सुभाऊ। शुभ आचरण कीन्हनाहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। सो प्रभु हरषि हृदय मोहिं लावा॥

दो०-अहोभाग्य मम अमित अति, राम-कृपा सुख पुञ्ज।
देखेउँ नयन विरंचि शिव-सेव्य युगल पदकञ्ज॥

सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुशुंडि शम्भु गिरिजाऊ॥
जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय शरण ताकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥

सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बाँधि बटि डोरी ॥
समदर्शी इच्छा कछु नाहीं । हर्ष शोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे । धरे देह नहिं आन निहोरे ॥

दो०-सगुण उपासक परम हित, निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्राण समान मोहिं, जिनके द्विज-पद प्रेम ॥

चौ०-सुनु लंकेश सकल गुण तोरे । ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे ॥
राम-वचन सुनि वानर यूथा । सकल कहहिं जय कृपावरूथा ॥
सुनत विभीषण प्रभु की बानी । नहिं अघात श्रवणामृत जानी ॥
पद अम्बुज गहि बारहिं बारा । हृदय समात न प्रेम अपारा ॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रणत-पाल उर अन्तर यामी॥
उर कछु प्रथम वासना रहेऊ। प्रभु-पद प्रीति सरित सो बहेऊ॥
अब कृपालु निज भक्ति जो पावनि। देहु दया करि शिव मन भावनि॥
एवमस्तु कहि प्रभु रणधीरा। माँगा तुरत सिन्धु कर नीरा॥
यद्दपि सखा तोहिं इच्छा नाहीं। मम दर्शन अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा॥

दो०-रावण क्रोधानल सरिस, श्वास समीर प्रचंड।
जरत विभीषण राखेऊ, दीन्हेउ राज अखंड॥
जो सम्पति शिव रावणहिं, दीन्ह दिये दस माथ।
सो सम्पदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पशु बिनु पूँछ विषाना ॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपिकुल मनभावा॥
पुनि सर्वज्ञ सर्व उर-वासी । सर्व रूप सब रहित उदासी ॥
बोले वचन नीति प्रतिपालक। कारण मनुज दनुजकुलघालक॥
सुनु कपीश लङ्कापति वीरा । केहिविधिउतरिय जलधिगंभीरा॥
संकुल उरग मकर झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥
कह लंकेश सुनहु रघुनायक। कोटि सिन्धु शोषक तव सायक॥
यद्यापि तदपि नीति अस गाई। विनय करिय सागर सन जाई ॥

दो०-प्रभु तुम्हार कुल-गुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि ।
बिनु प्रयास सागर तरहिं, सकल भालु कपि धारि ॥

सखा कह्यो तुम नीक उपाई। करब दैव जो होइ सहाई॥
मन्त्र न यह लक्ष्मण मन भावा। राम-वचन सुनि अति दुख पावा॥
नाथ दैव का कवन भरोसा। सोखिय सिन्धु करिय मन रोसा॥
कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥
सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसहु करब धरहु मन धीरा॥
असकहि प्रभु अनुजहिं समुझाई। सिन्धु समीप गये रघुराई॥
प्रथम प्रणाम कीन्ह प्रभु जाई। बैठे तट पुनि दर्भ डसाई॥
जबहिं विभीषण प्रभु पहँ आये। पाछे रावण दूत पठाये॥

दो०-सकल चरित उन्ह देखेउ, धरे कपट कपि देह।
प्रभु-गुण हृदय सराहि अति, शरणागत पर नेह॥

प्रगट बखानत राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ ॥
रिपु के दूत कपिन्ह जब जाने। तिनहिं बाँधि कपिपति पहँ आने ॥
कह सुग्रीव सुनहु सब बनचर। अङ्गभङ्ग करि पठवहु निशिचर ॥
सुनि सुग्रीव वचन कपि धाये। बाँधि कटक चहुँ पास फिराये ॥
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोशलाधीश कर आना ॥
सुनि लक्ष्मण तब निकट बुलाये। दया लागि हँसि दीन्ह छुड़ाये॥
रावण कर दीन्हेउ यह पाती। लक्ष्मण-वचन बाँच कुलघाती॥

दो०-कहेउ मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देस उदार।
सीता देइ मिलहु नतु, आवा काल तुम्हार ॥

तुरत नाइ लक्ष्मण-पद माथा। चले दूत बरनत गुण गाथा॥
कहत राम-यश लङ्कहि आये। रावण-चरण सीस तिन्ह नाये॥
बिहँसि दसानन पूछेसि बाता। कहसि न शुक आपनि कुशलाता॥
पुनि कहु कुशल विभीषण केरी। जासु मृत्यु आई अति नेरी॥
करत राज लङ्का शठ त्यागा। होइहि यव कर कीट अभागा॥
पुनि कहु भालु कीश कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥
तिनके जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिन्धु विचारा॥
कहु तपसिन कर बात बहोरी। जिनके हृदय त्रास बड़ि मोरी॥

दो०-भई भेंट की फिरि गये, श्रवण सुयश सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, बहुत चकित चित तोर॥

नाथ कृपा करि पूछेहु जैसे। मानहुँ वचन क्रोध तजि तैसे॥
मिला जाय जब अनुज तुम्हारा। जातहि राम-तिलक तेहि सारा॥
रावण दूत हमहिं सुनि काना। कपिन बाँधि दीन्हे दुख नाना॥
श्रवण नासिका काटन लागे। राम शपथ दीन्ही तब त्यागे॥
पूछहु नाथ कीश कटकाई। बदन कोटि शत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। विकटानन विशाल भयकारी॥
जेहि पुर दहेउ बधेउ सुत तोरा। सकलकपिनमहँ तेहिबलथोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमितनागबलाविपुलविशाला॥

दो०-द्विविद मयन्दरु नील नल, अङ्गदादि विकटासि।
दधिमुख केहरि कुमद गव, जामवन्त बलरासि॥

ये कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटि गनै को आना॥
राम-कृपा अतुलित बल तिनहीं। तृण समान त्रयलोकहि गिनहीं॥
अस मैं श्रवण सुना दसकन्धर। पद्म अठारह यूथप बन्दर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हें जीतहि रण माहीं॥
परम क्रोध मींजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोखहिं सिन्धुसरितझख व्याला। पूरहिं न तु भरिकुधर विशाला॥
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसे वचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज अशङ्का। मानहुँ ग्रसन चहत हैं लङ्का॥

दो०-सहज शूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर श्रीराम।
रावण कोटिन काल कहँ, जीति सकहिं संग्राम॥

राम तेज बल बुधि विपुलाई। शेष सहस शत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोखि शत सागर। तब भ्रातहिं पूछेउ नयनागर॥
तासु वचन सुनि सागर पाहीं। मागत पन्थ कृपा मन माँहीं॥
सुनत वचन विहँसा दससीसा। जो असि मति सहाय कृत कीसा॥
सहज भीरु कर वचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृपा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥
सचिव सभीत विभीषण जाके। विजय विभूति कहाँ लगि ताके॥
सुनि खल वचन दूत रिसि बाढ़ी। समय विचारि पत्रिका काढ़ी॥
राम-अनुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
विहँसि वाम कर लीन्हेसि रावन। सचिव बोलि शठ लाग बँचावन॥

दो०-बातन मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसि कुलखीस ।
राम विरोध न उबरिहहु, शरण विष्णु अज ईस ॥
होउ मान तजि अनुज इव, प्रभु-पद पंकज भृङ्ग ।
होइ राम शर अनल खल, जनि कुलसहित पतङ्ग ॥

चौ०-सुनत सभय मन महँ मुसुकाई । कहत दसाननसबहिं सुनाई ॥
भूमि परा कर गहत अकासा । लघु तापस कर बाग बिलासा ॥
कह शुकनाथ सत्य सब बानी । समुझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी ॥
सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहु विरोधा ॥
अति कोमल रघुवीर सुभाऊ । यद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥
मिलत कृपा प्रभु तुम पर करिहैं । उर अपराध न एकौ धरिहैं ॥

जनक-सुता रघुनाथहिं दीजै। इतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥
जब तेइँ देन कह्यो वैदेही। चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही ॥
चरण नाइ सिर चला सो ताहाँ। कृपा-सिन्धु रघुनायक जाहाँ ॥
करि प्रणाम निजकथा सुनाई। राम-कृपा आपनि गति पाई ॥
ऋषि अगस्त्य कर शाप भवानी। राक्षस भयउ रहा मुनि ज्ञानी ॥
बन्दि राम-पद बारहिं बारा। पुनि निज-आश्रम कहँ पगुधारा ॥

दो०-विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति ॥

चौ०-लक्ष्मण बाण शरासन आनू। सोखै वारिधि बिशिख कृशानू ॥
शठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपण सन सुन्दर नीती ॥

ममता-रत सन ज्ञान-कहानी । अति लोभी सन विरति बखानी ॥
क्रोधिहि शम कामिहिं हरि-कथा। ऊसर बीज बये फल यथा ॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लक्ष्मण के मन भावा ॥
सन्धानेउ प्रभु विशिख कराला। उठी उदधि-उर अन्तर ज्वाला॥
मगर उरग झषगण अकुलाने । जरत जन्तु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मणिगण नाना। विप्र रूप आये तजि माना ॥

दो०-काटे पे कदली फरै, कोटि यत्न करि सींच ।
विनय न मान खगेश सुनु, डाटेहिं ते नव नीच ॥

चौ०-सभय सिन्धु पद गहि प्रभु केरे। क्षमहु नाथ सब अवगुण मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इनकी नाथ सहज जड़ करनी ॥

तब प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन गाये॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहही। सो तेहि भाँति रहै सुख लहही॥
प्रभु भल कीन्ह मोहिं सिख दीन्हीं। मर्यादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं॥
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥
प्रभु-प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरहिं कटक न मोरि बड़ाई॥
प्रभु-आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु बेगि जो तुमहिं सुहाई॥

दो०-सुनत विनीत वचन अति, कह कृपालु मुसुकाय।
जेहि विधि उतरै कपि-कटक, तात सो करहु उपाय॥

चौ०-नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाईं ऋषि आशिष पाई॥
तिनके परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥

मैं पुनि उर धरि प्रभु-प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई॥
यहि विधि नाथ पयोधि बँधाइय।जेहि यह सुयश लोकतिहुँ गाइय॥
यहि शर मम उत्तर तटवासी। हतहु नाथ खलगण अघ-रासी॥
सुनि कृपालु सागर-मन-पीरा। तुरतहिं हरी राम रणधीरा॥
देखि राम-बल अतुलित भारी।हरषि पयोनिधि भयो सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहिं सुनावा।चरण बन्दि पाथोधि सिधावा॥
छं०-निज भवन गवनेउ सिन्धु श्रीरघुवीर हिय मत भायऊ।
यह चरित कलिमल हरण जस मतिदास तुलसी गायऊ॥
सुख-भवन संशय-दमन शमन विषाद रघुपति-गुण-गना।
तजि सकल आश भरोस गावहिं सुनहिं सज्जन शुचिमना॥

दो०-सकल सुमंगल-दायक, रघुनायक गुणगान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु बिना जलयान ॥

श्री दुर्गोस्वामितुलसीदासकृतश्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने सुन्दरकाण्डम् समाप्तम् ।

अष्टादशश्लोकि गीता

—:❀:❀:—

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव !
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय !
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥२॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥३॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाऽधिगच्छति ॥४॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥५॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥६॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥७॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥८॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥९॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१०॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जित ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥११॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥१३॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१४॥

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥ १५॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ १६॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ १७॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोचयिष्यामि मा शुचः॥ १८॥

गीतासारमिदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः।
विष्णुलोकमवाप्नोति भयशोकविनाशनम्॥

इति श्रीवेदव्यासविरचिताष्टादशश्लोकिगीताशास्त्रम् सम्पूर्णम्।

श्री गुरुदेव विनय ।

[१]

ओम् ईश्वर गुरुदेव मनाऊँ। बार बार मैं शीश नवाऊँ ॥
सत गुरु एक अरज सुन लीजै। शरणागत की ताप हरीजै ॥
जन्म मरण को संकट भारी। डरतो आयो शरण तिहारी ॥
सुनहु तात मैं कहौं पुकारी। सत्य वचन सुनि लीजै प्यारी ॥
प्रथमहि सत संगत में जाओ। साधन चार संपन्न हो जाओ ॥
प्रेम सहित निज सरवन कीजै। सत गुन अधिक मननकर लीजै ॥
निदिध्यासन नितकरियो भाई। जासे मन सुस्थिर होइ जाई ॥
तत्-पद त्वं-पद शोधन कीजै। लक्ष्य अर्थ पर चित नित दीजै ॥
वोई देश में जानो रे होई। पूरबला से बिछड़े जोई ॥

देश अनादि जीव का ओई। सत चित आनन्द जाने सोई॥
जो अभिमान करम कर जोई। जानो निश्चय बन्धन सोई॥
जो नर सुख की धारा जोई। विषय त्याग कर समरथ होई॥
सुसमदृष्टि सम पुन्य न कोई। विषम दृष्टि सम पाप न होई॥

*****

* अथ सरस्वतीस्तोत्रम् *

—:*****:—

रविः रुद्रः पितामह विष्णुनुत हरिन्दनः कुङ्कुमः पङ्कयुतम्।
मुनिवृन्दःगणेन्द्रःसमानयुतं तव नौमि सरस्वति! पादयुगम्॥१॥
शशिशुद्धिसुधाहिमधामयुतं शरदम्बरबिम्बसमानयुतम्।

बहुरत्नमनोहरकान्तियुतं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥२॥
कनकाब्जविभूषितभूतिभवं भवभावविभासितभिन्नपदम् ।
प्रभुचित्तसमाहितसाधुपदं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥३॥
भवसागरमज्जनभीतिमतं प्रतिपादितसन्ततिकारमिदम् ।
विमलादिकशुद्धविशुद्धपदं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥४॥
मतिहीनजनाश्रयपादमिदं सकलागमभासितभिन्नपदम् ।
परिपूरितविश्वमनेकभवं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥५॥
परिपूर्णमनोरथधामनिधिं परमार्थ विचारविवेकधियम् ।
सुरयोषिदुपासितपादतलं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥६॥
सुरमौलिमणिद्युतिशुभ्रकरं विषयादिमहाभयवर्गहरम् ।

निजकान्तिविलेपितचन्द्रयुतं तव नौमि सरस्वतिः पादयुगम्॥७॥
गुणानैककुलास्थितिभीतिपरं गुणगौरवगर्वितसत्यपदम् ।
कमलोदरकोमलपाददतलं तव नौमि सरस्वतिः पादयुगम् ॥८॥
त्रिसन्ध्य यो जपेन्नित्यं जले वापि स्थले स्थितः ।
पाठमात्रात् भवेत्प्रासो ब्रह्मनिष्ठः पुनः पुनः ॥९॥

इति सरस्वती स्तोत्रम् ।

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिः प्रिया गेहिनी,
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनस्संयमः ।
शय्या भूमितलं दिशो विवसनं ज्ञानामृतं भोजनम्,
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद् भयं योगिनः ॥

[अर्थ] जिसका धैर्य ही पिता, क्षमा ही माता, शान्ति ही प्रिया स्त्री, सत्य ही पुत्र, दया ही बहन, मन का संयम भाई भूमि ही खाट, दिशा ही कपड़े, तथा ज्ञानरूपी अमृत ही भोजन हो ऐसे विवेकी योगिजन को संसार में किससे भय हो सकता है ?

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहङ्करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥

[अर्थ] सुख तथा दुःख का देने वाला दूसरा नहीं, दूसरे पर यह लाञ्छन लगाना अपनी मूर्खता है । किसी भी कार्य में "मैं कर रहा हूँ" यह झूठा अभिमान है । संसारी जीव अपने कर्मरूपी सूत से बँधा है । अर्थात् अच्छा कर्म करने वाले को सुख तथा बुरा कर्म करने वाले को दुःख अपने आप होता है ।

दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंगतम् ॥

[अर्थ] मनुष्य होना, मोक्ष की इच्छा रखना तथा महापुरुषों का साथ होना ये तीनों ही संसार में दुर्लभ हैं, बिना देवानुग्रह (देवताओं की कृपा, भगवान की दया) के असम्भव हैं ।

भगवान् से प्रार्थना करें—

या त्वरा द्रौपदीत्राणे या त्वरा गजमोक्षणे ।
मय्यार्त्ते करुणामूर्त्ते सा त्वरा क्व गता हरे ॥

[अर्थ] हे भगवन ! जो जल्दबाजी आपने द्रौपदी की लाज बचाने के लिये की, जो ग्राह से गज को छुड़ाने में की, हे करुणा की मूर्त्ति ! मुझ दुःखी की रक्षा के लिये आप की वह जल्दबाजी कहाँ गई अर्थात् मेरी रक्षा में विलम्ब क्यों हो रहा है ?

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयम्,
मौने दैन्यभयम् बले रिपुभयम् रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभयम् गुणे खलभयम् कार्ये कृतान्ताद् भयम्,
सर्वं वस्तु भयान्वितम् भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

[अर्थ] संसारी जीव को भोग में रोग का भय, उत्तम कुल में पतन का भय, धन रहने पर राजा से भय, मौन (चुप) रहने पर दीनता का भय, बल रहने पर शत्रु उत्पन्न होने का भय, रूप रहने पर विवाद का भय, गुण होने पर दुष्टों से भय, शरीर पर यमराज का भय, इस तरह संसार की सभी चीजें भय से युक्त हैं केवल वैराग्य ही एक वस्तु ऐसी है जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं ।

—:❀❀❀❀❀:—

गई बहोरि गरीब नेवाजू ।
सरल सबल साहिब रघुराजू ॥

रामेति द्व्यक्षरं नाम महापातकनाशनम् ।

श्रीराम जयराम जय जय राम

संसार की प्रगति

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥

अर्थः—आशा ही एक नदी है, मनोरथ ही जल है, तृष्णारूपी लहरें चलती हैं, विषयानुराग ही उस महानदी के ग्राह हैं, नाना प्रकार के तर्क-वितर्क ही पक्षीरूप से उसपर कल्लोल कर रहें हैं, मोहरूपी पानी की भँवर के कारण कठिनता से पार पाने योग्य, बड़ी २ चिन्तारूपी किनारे वाली उस नदी के पार जाने वाले योगी ही आनन्द प्राप्त करते हैं।

मुद्रकः—हरी सिंह, सर्वोदय प्रेस लहुराबीर, बनारस।